

वैदिक उपासना

संकलन कर्त्ता

इन्द्रराज

मन्त्री

आर्य समाज, मेरठ शहर

एवम्

केन्द्रीय आर्य समिति मेरठ ।

प्रकाशक :

श्री सीताराम जी भुटानी बज़ाज़, थापर नगर द्वारा अपनी धर्मपत्नी स्वर्गीय रामकुमारी जी की प्रथम बरसी के अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति में प्रकाशित ।

प्रथम वृत्ति १०,००
दिनांक ८-१-७१

मूल्य :
'वेद प्रचार'

दो शब्द

वैदिक उपासना नामक यह पुस्तक पाठक वृन्द के समक्ष उपस्थित हो रही है। इस पुस्तक के संकलन की प्रेरणा, मुझे श्री सीताराम जी भुटानी बजाज़ थापर नगर से प्राप्त हुई। उनकी स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती रामकुमारी जी की प्रथम बरसी के अवसर पर उनकी पुण्य स्मृति में ही यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इस अवसर पर पूज्य स्वर्गीय माता रामकुमारी जी का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है। वह उनकी सौम्य मूर्ति सहसा दृष्टि पथ पर आ जाती है। भगवान् की ओर से ही, उन्हें सुन्दर स्वभाव, मधुर वाणी, पतिव्रत धर्म में निष्ठा, अतिथियों का आतिथ्य, और वैदिक धर्म में श्रद्धा और अटूट आस्था जैसे अमूल्य गुण प्राप्त थे। उन्होंने आर्य समाज की पाकिस्तान बनने से पहले थापर नगर मेरठ में भी बड़ी सेवा की। उनकी अपनी इस व्रतनिष्ठा और तपस्या का प्रभाव था कि उन्हें श्री सीताराम जी जैसे धार्मिक, दानशील एवं वैदिक धर्म म आस्थावान पति प्राप्त हुए और सुरेश भुटानी जैसे पुत्र रत्न की उन्हें प्राप्ति हुई एवम् श्रीमती निर्मल कुमारी जैसी सुशील पुत्र वधु प्राप्त हुई। पुत्री लाज भी अत्यन्त विनयशील अपने घर मे सुखी गृहस्थ का उपभोग कर रही है। एक पुत्री कु० दर्शन की तो आप ही आधार थी। आपके निधन से उस पुत्री का आधार जरूर छिन गया परन्तु उस पुत्री में आपके सौम्यता आदि गुण विराजमान हैं। भगवान् उसे शक्ति प्रदान करे कि वह भी आपके मार्ग पर चलती हुई अपने जीवन का सफल करे। जब कभी घर में जाना होता था उनकी स्नेहमयी वाणी से आशीर्वाद प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता था। बड़े बड़े यज्ञों में यजमान बनने की जब-जब मैंने प्रार्थना की आपने कभी भी मुझे निराश नहीं किया। हां! मैं इतना तो आज भी अनुभव करता हूँ कि वे अपने स्थान पर अपने प्रिय सुपुत्र डॉ० सुरेश कुमार जी भुटानी को यजमान के रूप में देखकर बहुत प्रसन्न होती थीं। वास्तव म माता तो निर्माण करने वाली होती है। उसकी उत्कट अभिलाषा रहती है कि उसकी सन्तान उसके विचारों के अनुरूप धार्मिक, शिष्ट और आज्ञानुवर्तिनी हो। मैंने यह भी अनुभव किया कि यद्यपि भ्राता डॉ० सुरेश कुमार जी भुटानी अपने व्यवसाय के कारण

अत्यन्त व्यस्त रहते थे और रहते हैं तथापि जब पूज्य माता जी ने यजमान बनने की प्रेरणा बड़े स्नेह एवं वात्सल्यमय शब्दों में की तो आपने तुरन्त स्वीकृति प्रदान की। आज भी मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि पूज्य माता जी के अन्तस्तल की बात श्रीयुत् भ्राता डा० सुरेश जी जानते ही हैं और पूज्या माता जी की भावनाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति वे इस समय भी करते रहते हैं और भविष्य में भी बड़ी तन्मयता से करते रहेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। वास्तव में सोचा जाए तो यह ही माता जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि है, यह ही उनका सच्चा श्राद्ध है।

मैं यदि बहुत व्यस्त रहता हूँ परन्तु जब मुझे इस पुस्तक के संकलन की प्रेरणा प्राप्त हुई तो मैंने अपना प्रथम कर्त्तव्य समझा कि मैं भी उस पूज्यनीया माता के चरणों में इस संकलन द्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करूँ। और आज मैं परम पिता परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद करता हूँ कि उसकी कृपा से मैं इस पुस्तक के संकलन के रूप में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए समर्थ हो सका हूँ।

इस पुस्तक का मैंने नाम "वैदिक उपासना" रखा है। वेद में हम गृहस्थ लोगों के लिए बड़ा ही सुन्दर उपदेश है कि हम खूब धन कमाएँ। वेद कहता है :—"वयं स्याम पतयो रयीणाम्" हम धन ऐश्वर्यों के स्वामी बनें। परन्तु साथ ही दूसरे स्थञ्ञ पर वेद का यह भी आदेश है कि "शतहस्त समाहर, सहस्र हस्त संकिर" कि ऐ मानव तू सौ हाथों से कमा तो हजार हाथों से दान कर। आज का संसार, धन ऐश्वर्य कमाते-कमाते अपने जीवन के उद्देश्य को ही भूल गया। उसने समस्त ऐश्वर्यों के भण्डार एवं दाता प्रजापति परमात्मदेव को भुला दिया। उसने उसकी दान करने की आज्ञा को भी अनसुना कर दिया। परिणामस्वरूप मानव धन कमाते-कमाते ही अशान्त और व्याकुल हो गया। दुःखों, कष्टों और संकटों से घिर गया। मानव को सुख चाहिए, शान्ति चाहिए और आनन्द चाहिए। इसलिए उस रास्ते को बार-बार बताने की आवश्यकता है जिससे यह सुख, शान्ति और आनन्द मिल सकता है। वह रास्ता केवल वैदिक उपासना का ही रास्ता है।

वैदिक उपासना की यह विशेषता है कि वह मानव से संसार नहीं छुड़वाना चाहती। वह दिनचर्या में थोड़े से परिर्तवन से मानव के जीवन की

दिशा को ही बदल देना चाहती है। इसी दृष्टिकोण से हमने दिनचर्या में पग-पग पर आध्यात्मिक प्रेरणा देने वाली विधियों का ही संकलन किया है। इन विधियों के अपनाने से संसार यात्रा में चलते-चलते अपना इहलोक और परलोक सुधर सकता है और जीवन में सरसता और रोचकता का संचार हो सकता है। इन विधियों में जहाँ वेद मन्त्रों के द्वारा हमें प्रेरणा मिलेगी वहाँ उन वेद मन्त्रों पर महर्षि दयानन्द जी महाराज का भाष्य भी प्रस्तुत किया गया है ताकि जीवन यापन में तपस्वी एवं परमयोगी महर्षि दयानन्द जी महाराज की लेखनी से जिज्ञासु साधकों को अधिक उत्साह की उपलब्धि हो सके।

विधियों के संकलन का क्रम भी पाठकों के समक्ष रख देना बहुत आवश्यक है सर्वप्रथम एक वेद मन्त्र के आधार पर "ईश्वर की उपासना क्यों और कैसे ?" शीर्षक से एक छोटा से लेख प्रस्तुत किया गया है। उसके पश्चात् उषःकाल में उठने के समय प्रातःकालीन मन्त्रों का पाठ ऋषि दयानन्द जी महाराज के भाष्य सहित प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रों के प्रातःकाल प्रभात वेला में उच्चारण मात्र से बड़ी स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त होती है। तत्पश्चात् (ब्रह्मयज्ञ) सन्ध्या का क्रम एवं मत्रों का भावार्थ, इसके बाद उपनिषद् के श्लोकों का भावार्थ सहित संग्रह ब्रह्म स्तोत्र के नाम से रखा गया है जिसके पाठ मात्र से परम पिता परमात्मा की महानता द्वारा हृदय पवित्र भावों और आस्तिक भावों से पूरित हो उठता है। इसके पश्चात् देवयज्ञ अर्थात् दैनिक यज्ञ के मन्त्रों का भावार्थ सहित संकलन है। इसके पश्चात् नित्य प्रति स्वाध्याय के लिए यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के मन्त्रों का महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत भाषाभाष्य एवं कुछ अन्य मन्त्रों का भावार्थ प्रस्तुत किया गया है। जिससे जीवन में बड़ी प्रेरणा प्राप्त होती है। भोजन के समय का मन्त्र अर्थ सहित दिया गया है इसके पश्चात् शयन समय में वेद मन्त्रों का ऋषि भाष्य सहित संकलन प्रस्तुत किया गया है। सोते समय मन हमारा शिव संकल्प वाला बन जाए ऐसी प्रार्थना इन मन्त्रों में भगवान् से की गई है। अन्त में कुछ भजनों का संग्रह है। इन सब विधियों का दिनचर्या में समावेश करने पर जीवन प्रेरणा और स्फूर्तिदायक बनेगा और जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त होगा।

अन्त में परम पिता परमात्मा का बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूँ कि जिसकी महती कृपा से यह संकलन सम्पन्न हो रहा है। इसके पश्चात् पितृतुल्य

श्री सीताराम जी भुटानी बजाज थापर नगर का भी अतिशय धन्यवाद है कि उनकी प्रेरणा से यह संकलन हुआ और इसका समस्त व्यय उन्होंने वहन किया है। मानव होने के नाते इस संकलन में त्रुटियाँ रह सकती हैं इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं। इस संकलन में जो भी अच्छाई है वह सब परमात्मदेव की एवं महर्षियों की है जिसको जीवन में लाने से जीवन मधुर बन सकता है। परमात्मा की हम सब पर कृपा हो हम फूलें फलें और उसको सदैव स्मरण रखें। ओं शम् !

विद्वानों का अनुचर
इन्द्रराज
मन्त्री आर्य समाज, मेरठ शहर।



ईश्वर की उपासना क्यों और कैसे ?

ओं उत स्वया तन्वा संवदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृडीकं सुमनाअभिख्यम् ।।

(ऋ० मं० ७ सू० ८६ मं० २)

अर्थ :—(उत स्वया तन्वा संवदे) हां ! मैं अपनी देह से संवाद करता हूँ—पूछता हूँ (तत्-कदा-नु-वरुणे; अन्तः–भुवानि) तो फिर कब वरने योग्य एवं वरने वाले परमात्मा वरुणदेव के अन्दर विराजमान होऊँ—ऐसा दिन कब आएगा जबकि मैं वरने योग्य और वरने वाले परमात्मा में अपने को विराजमान हुआ देखूं (मे) मेरी (किं हव्यम्) किस भेंट को (अहृणानः—जुषेत) स्वागत करता हुआ स्वीकार करे (कदा मृडीकं सुमनाः अभिख्यम्) कब मैं सुखस्वरूप आनन्द रूप परमात्मा को पवित्र मन वाला और निरुद्ध मन वाला होकर देख सकूँ।

व्याख्या एवं भावार्थ :—इस मन्त्र में एक उपासक के हृदय की तड़प उस वरने योग्य पर ब्रह्म परमात्मा के प्रति दर्शाई गई है साथ ही किस प्रकार से उस पर ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति होती है यह भी बहुत सुन्दर शब्दों में बताया गया है। इस मन्त्र पर विस्तार से विचार करने से पूर्व यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि परमात्मा की उपासना की क्या आवश्यकता है ? अथवा उसकी उपासना क्यों करनी चाहिए ?

हम सब अनुभव करते हैं कि इस चलते-फिरते दिखलाई देने वाले शरीर में चार वस्तुएं मुख्य रूप से विराजमान है। (१) इन्द्रियाँ अथवा स्थूल शरीर, (२) मन, (३) बुद्धि, (४) आत्मा ! इन चारों पदार्थों के लिए किसी न किसी प्रकार के भोजन की आवश्यकता है। सर्वप्रथम हम अनुभव करते हैं कि इन्द्रियों और स्थूल शरीर के लिए अन्न की और धन की आवश्यकता है। अन्न और धन के बिना यह शरीर चल नहीं सकता। इसी अन्न और धन को हम अर्थ के नाम से भी पुकार सकते हैं अर्थात् शरीर के लिये अर्थ रूपी भोजन की आवश्यकता है। दूसरा पदार्थ हमारे पास मन है। मन हमेशा कामनाएँ करता रहता है। शास्त्रकार भी कहते हैं:—"संकल्प विकल्पात्मकं मनः" संकल्प विकल्प करने वाला मन है। इस संकल्प-विकल्प को ही दूसरे शब्दों में काम के नाम से पुकारते हैं। तो इस प्रकार मन का भोजन काम ठहरता है। तीसरी

वस्तु हमारे पास बुद्धि है। बुद्धि का कार्य निश्चय करने का है। अच्छा क्या है ? बुरा क्या है ? इसका सदैव विवेक करते रहना, यह बुद्धि का कार्य है। इसी सदसद् विवेक को ही धर्म के नाम से कहते हैं। इस प्रकार बुद्धि का भोजन धर्म है। इन तीनों पदार्थों के भोजन का पता लगने के पश्चात् अब प्रश्न यह पैदा होता है कि आत्मा का भोजन क्या है ? आत्मतत्त्व अनन्त काल से आनन्द की खोज में एक विशाल यात्रा पर निकला हुआ है। वह उस आनन्द को प्राकृतिक पदार्थों से प्राप्त करना चाहता है। कभी वह धन-दौलत कमाने में ही आनन्द समझता है, कभी वह परिवार बसाने में ही आनन्द मान बैठता है। कभी वह अधिकार एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने में ही आनन्द समझता है। इस प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं की प्राप्ति में खून पसीना एक करता हुआ वह आनन्द को प्राप्त करना चाहता है। परन्तु यह प्राकृतिक पदार्थ बड़े चंचल, सदैव परिवर्तनशील उसको पग-पग पर ठोकरें मारते हुए दुःख सागर में धकेल देते हैं। वह जीवात्मा इन भौतिक पदार्थों से आनन्द की कामना करता हुआ, अनायास दुःख, क्लेश, और संकटों में फँस कर दुर्दशा को प्राप्त होता है। हमारे तपस्वी साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों का कहना है कि जीवात्मा को यदि आनन्द की चाह है तो उसे आनन्द के स्रोत के पास ही जाना होगा। उसे आनन्द वहाँ से मिलेगा ही नहीं, जहाँ आनन्द का लेशमात्र भी नहीं है। इन प्राकृतिक और भौतिक पदार्थों में तो सुख-दुःख निहित है। वह सुख भी दुःख परिणामी है। इसलिए प्राकृतिक पदार्थों की उपासना से और उनके सम्पर्क और संसर्ग से तो दुःख की ही प्राप्ति होगी। यदि आनन्द प्राप्त करना है तो आनन्द के भण्डार सच्चिदानन्द स्वरूप परम पिता परमात्मा की चरण शरण में ही जाना होगा। और अपने सब क्रिया कलापों को आध्यात्ममुखी बनाना होगा। अर्थात् अर्थ और काम से पूर्व धर्म की स्थापना करनी होगी। धर्मपूर्वक अर्थ कमाना होगा और धर्मपूर्वक ही कामनाएँ करनी होगीं तभी हमारा आनन्द प्राप्ति का मार्ग सुगम बन सकेगा। इस चीज़ को दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि इस जीवात्मा का भोजन आनन्दस्वरूप परमात्मा ही है। उपनिषद्कार भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं "अहमन्नमहमन्नम हमन्नम्" परमात्मा कहता है कि मैं अन्न हूँ। मैं जीवात्मा का अन्न हूँ। मैं भक्तों के द्वारा अन्नरूप में खाया जाता हूँ। "जीवात्मा का भोजन परब्रह्म

आनन्दस्वरूप परमात्मा ही है," ऐसा निश्चय हो जाने पर यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि जीवात्मा के लिए ईश्वर की उपासना अत्यन्त आवश्यक है।

अब दूसरे रूप से जरा विचार करना प्रारम्भ करें। हम छोटे-छोटे कार्यों के लिए एक दूसरे का धन्यवाद दे देते हैं। जरा सा आपने मेरा काम किया, मैंने आपका धन्यवाद दे दिया। जरा सा मैंने आपका कार्य किया आपने मेरा धन्यवाद दे दिया। सांसारिक लोग तो बड़े विचित्र ढग से एक दूसरे को धन्यवाद दे देते हैं। इसको एक दृटान्त से समझा जा सकता है। एक व्यक्ति की जब आँखों की दृष्टि कम हो गई, तो वह एक नेत्र विशेषज्ञ डॉक्टर के पास पहुंचा। उसने श्री डॉक्टर जी से नेत्रों की परीक्षा करने के लिए विनम्र प्रार्थना की। डॉक्टर महोदय ने नेत्रों की परीक्षा करने के पश्चात् २५) रु० अपनी फीस माँग ली। फीस देने के पश्चात् उस व्यक्ति ने भी डाक्टर जी को एक ऐनक का भी आर्डर दे दिया। श्री डाक्टर महोदय ने एक सप्ताह के पश्चात् आकर ऐनक ले जाने को कहा। एक सप्ताह के पश्चात् वह व्यक्ति पुनः श्री डाक्टर साहब के पास आकर ऐनक का मूल्य दे देता है। जब डाक्टर साहब ऐनक आँखों पर चढ़ा देते हैं और हाथ में पढ़ने को एक पुस्तक दे देते हैं। उस समय वह व्यक्ति पुस्तक को पढ़ता जाता है और श्री डाक्टर साहब को फीस और मूल्य देने के पश्चात् भी धन्यवाद और आशीर्वाद देता हुआ कहता है कि डॉक्टर साहब आपका भला हो, आपकी वृद्धि हो, आपकी सन्तान लम्बी आयु वाली हो। आपने मुझे पुनः दृष्टि दे दी है। मनीषियों का कहना है कि ऐ लोगो ! जब एक डाक्टर को तुम इसलिए बारम्बार धन्यवाद दे रहे हो कि उसने ऐनक के पूरे दाम और नेत्र परीक्षा की पूरी फीस लेकर तुम्हें ऐनक के द्वारा पुनः दृष्टि दे दी है तो उस पर ब्रह्म परमात्मा का धन्यवाद क्यों नहीं करते कि उसने तुम्हें अमूल्य दो आँखें दी हुई हैं। जिनके न होने से डाक्टर की हज़ार ऐनकें बेकार हैं। उस परमात्मा ने हमें आँखें ही नहीं, सुन्दर शरीर, वैभव, प्रतिष्ठा, परिवार यहाँ तक कि अमूल्य प्राण तक दे रखें हैं जिनके बिना हम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते। अतः उस परम पिता परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद और नमन करना चाहिए जो कि उसकी उपासना के बिना नहीं हो सकता। इसीलिए कृतज्ञता का प्रकाश करने के लिए जीवात्मा के लिए परमात्मा की उपासना अत्यन्त आवश्यक है।

कुछ भाई ऐसा भी कहते हैं कि परमात्मा की उपासना की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति को अच्छे कर्म करने चाहियें। इस प्रश्न पर भी हमारे मनीषियों ने विचार किया। उनका कहना है कि एक चित्रकार एक बहुत सुन्दर चित्र बना रहा है। जब तक वह चित्र के निर्माण में संलग्न है तब तक उसे यह ठीक पता नहीं लग सकता कि वह जिस चित्र को बना रहा है वह ठीक भी बन रहा है या नहीं। जब उस चित्र से दूर होकर उस चित्र को बड़े ध्यान से देखता हैं तो उसे उस की कमियों का झट पता चल जाता है। ठीक इसी प्रकार संसार के कार्यों में निरन्तर संलग्न व्यक्ति संसार के निरन्तर सम्पर्क में रहता हुआ यह नहीं जान सकता कि वह ससार में जिस चित्र को बना रहा है वह ठीक भी बन रहा है या नहीं। प्रातः सायं इस संसार रूपी चित्र से दूर होकर चिन्तन के क्षेत्र में पहुँच कर ही वास्तविक पता चलता है कि चित्र ठीक भी बन रहा है या नहीं। यह एकान्त चिन्तन और कुछ नहीं है यह तो प्रभु की उपासना ही है। इसलिए हमारे जीवन में उपासना का कितना महत्व है यह भलि भाँति विदित हो जाता है।

पीछे कहा जा चुका है कि जीवात्मा अनन्त आनन्द की खोज में एक विशाल यात्रा पर निकला हुआ है। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए वह नाना प्रकार के कर्मों और वासनाओं के आधार पर नाना प्रकार के शरीरों को धारण करता हुआ नाना प्रकार की योनियों में जा चुका है। इन योनियों की कौन गिनती करे। पुराण के एक लेख के अनुसार ये ८४ लाख योनियां हैं। आज का विज्ञान भी इन योनियों को कई हजार तक गिन चुका है। शास्त्रकारों का कथन है कि मानव योनि को छोड़ कर शेष सब भोग योनियां है। इन में अज्ञान रूपी अन्धकार का साम्राज्य है। केवल मानव योनि में बुद्धिरूपी प्रकाश के दर्शन होते हैं। मानव तन ही परमात्मा के दरबार में प्रवेश द्वार है। जो व्यक्ति मानव तन प्राप्त कर के भी पशु वासनाओं और चेष्टाओं में लिप्त है, उसका बड़ा दुर्भाग्य है। जो व्यक्ति नर तन प्राप्त कर के भी परम पिता परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता वह बहुत ही दुर्भाग्यशाली है। इसीलिए वेद मन्त्र में अपनी देह से ही संवाद का एक दृश्य दृष्टि गोचर हो रहा है। एक उपासक अपनी देह से संवाद करता हुआ उस से पूछ रहा है कि ऐ मेरी मानव देह!

तू बता कि "तत् कदा नु वरुणे अन्तः भुवानि" कि कब मैं वरने योग्य अथवा वरने वाले वरुणदेव भगवान् के अन्दर अपने आप को विराजमान हुआ देखूँगा। ऐ मेरी देह ! तूने मुझे अब तक नाना योनियों में धकेल कर बहुत भटकाया है। यदि तू अच्छे कर्म करती तो मैं कदापि नीच योनियों में पहुँचकर अज्ञान रूपी अन्धकार में ठोकरें न खाता, दर-दर न भटकता। ऐ देह ! क्या तेरा ऐसा ही कर्त्तव्य है कि तू विषयों की दास बन कर मुझे पतन और नरक के गढ़े में गिरा दे। नहीं नहीं वेद ने तो तुम्हें देवताओं की अयोध्या नगरी बताया है। शास्त्र कार तो तुम्हें मुक्ति का द्वारा बता रहे हैं। फिर मैं तुझे प्राप्त कर के उस दिव्य प्रकाश स्वरूप आनन्दमय भगवान् के दर्शन क्यों नहीं कर पा रहा हूँ ? ओहो ! मैं अज्ञानी हूँ। मैं उस कमनीय भगवान् को इन चरम चक्षुओं से देखना चाहता हूं। जबकि शास्त्रकार उच्च स्वर से पुकार पुकार कर कह रहे हैं:—

"न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो-य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।

(कठ० अध्याय २ वल्ली ३ श्लोक ९)

कि इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। आँख ही क्या वह किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है। हो भी कैसे ? जब उस आनन्द स्वरूप भगवान् की कोई प्रतिभा-मूर्ति ही नहीं है। वेद कहता है "न तस्य प्रतिमा अस्ति" (यजु० ३२/३) कि उस परमात्मा की प्रतिमा-परिमाण, उस के तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति, मूर्ति व आकृति ही नहीं है। इसी प्रकार से अन्यत्र यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के ८वें मन्त्र में पुनः कहा गया है कि वह भगवान् "अकाय" है अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर रहित है। वह भगवान् (अव्रणम्) है अर्थात् वह छिद्र रहित और अच्छेदय है। वह भगवान् "अस्नाविरम्" है अर्थात् नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध के रूप बन्धन से रहित है। ऐसी स्थिति में वह इन आंखों से कैसे दिखलाई दे सकता है। वह तो समस्त इन्द्रियों की पहुंच से परे है। तो फिर उसके दर्शन मैं किस प्रकार से कर सकता हूँ। उपर्युक्त श्लोक में आया है कि वह भगवान् (हृदा हृत्स्थया बुद्ध्य) हृदय स्थिता बुद्धि से (मनीषा—मनसः संकल्पादि रूपस्येष्टे नियन्तृत्वेनेति मनीट् तया हृदा मनीषाविकल्पत्रिय्या, मनसामननरूपेण सम्यग्दर्शनेन, अभिक्लृप्तोऽभिसमर्थितोऽभिप्रकाशित इत्येतत् (शां० भाष्य०) जो कि संकल्पादिरूप

मन की नियन्त्री हो कर ईशन करने के कारण "मनीट्" है। उस विकल्य शून्या बुद्धि से मन अर्थात् मननरूप यथार्थ दर्शन द्वारा सब प्रकार समर्थित अर्थात् प्रकाशित हुआ वह परमात्मा जाना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त उपनिषद्कार अन्यत्र भी परमात्मदर्शन के विषय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते !
दृश्यते त्वग्रचया बुद्ध्या सूक्ष्मथा सूक्ष्मदर्शिभि ।।

(कठ० अ० १ बल्ली ३ श्लोक १२)

कि सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ वह परमात्मा प्रकाशमान नहीं होता। यह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जाता है।

ऊपर लिखित शास्त्र वचनों से यह विल्कुल स्पष्ट है कि वह पर ब्रह्म परमात्मा इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता है—कई व्यक्ति इस पर भी शंका कर सकते हैं कि आँखों से न दिखाई देने के कई अन्य कारण भी हो सकते हैं। हो सकता है कि वह परमात्मा अन्धेरे के कारण न दिखाई देता हो। उसे हम सूर्य के, चान्द के, तारागण के, बिजली के अथवा अग्नि के प्रकाश में देखने में समर्थ हो सकते हों। इस शंका को भी निर्मूल करते हुए शास्त्रकार कहते हैं :—

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

(कठ० अध्याय २, बल्ली २ श्लोक १५)

कि वहाँ उस आत्म लोक में सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न यह विद्युत् ही चमचमाती है फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है ? अर्थात् ये सब प्रकाशक पदार्थ उस पर ब्रह्म परमात्मा को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। उस परमात्मा के प्रकाशमान होते हुए ही यह सब कुछ प्रकाशित होता है उसका प्रकाश ही इन सब प्रकाशक पदार्थों को भी प्रकाशित करता है।

स्पष्ट है कि इन्द्रियां किसी भी अवस्था में उस सूक्ष्ममाति सूक्ष्मपरमात्मा

को देखने का सामर्थ्य नहीं रखतीं। वह परमात्मा तो मन पर शासन करने वाली विकल्प शून्य सूक्ष्म तीव्र और पवित्र बुद्धि द्वारा ही अनुभव करने योग्य है। इस प्रकार की बुद्धि कैसे प्राप्त की जाए इस सन्दर्भ में वेद कहता है कि कोई न कोई अपनी प्रिय भेंट उस पर ब्रह्म परमात्मा को अर्पित करनी पड़ेगी जिसको वह सहर्ष स्वीकार कर लेवे। अब मैं पुनः अपनी देह से ही पूछता हूँ कि वह कोनसी प्रिय वस्तु हो सकती जो मैं उस परमदेव परमश्वर को भेंट कर सकता हूँ। मेरी देह तो जन्म से लेकर मरणपर्यन्त मेरी जीवात्मा के साथ ही रहती है। संसार का कौन सा जड़ पदार्थ है कि जो मैं उस की भेंट करू। वह तो सारे संसार का मालिक ही है। इस प्राकृतिक संसार की किसी भी वस्तु पर मेरा अधिकार ही नहीं है ये सब वस्तुयें तो उसी के अधिकार में हैं और इन वस्तुओं की उसे न ही इच्छा है और न ही आवश्यकता। फिर वह '**किं मे हव्यमहृणानो जुषेत**" मेरी किस भेंट को सहर्ष स्वीकार कर सकता है? ओहो! मेरी समझ में आया कि मैं उसे एक वस्तु की भेंट कर सकता हूं और वह है **मेरा मन**। मन है तो मेरा परन्तु इस समय मेरे अहित चिन्तक शत्रुओं में आसक्त है वह पापों में और दुरितों में लिप्त है। काम क्रोधादि आसक्तियों में लिप्त हुआ बरवस मुझे भी त्रिविध बन्धनों में जकड़ रहा है। पापी मन को तो वह भगवान् स्वीकार भी नहीं कर सकता। और पापी मन तो उसकी शरण में जा भी नहीं सकता। मैं अपने मन में उसके पवित्र "ओ३म्" नाम को वसा लूं। उसी पवित्र नाम का स्मरण करू तभी तो वह मेरी इस सुन्दरतम भेंट को स्वीकार कर मेरे हृदय रूपो आसन पर विराजमान हो सकेगा।

किसी विद्वान् ने इस समस्या का समाधान करते हुए कितना सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। एक साधु भिक्षा वृत्ति करता हुआ नगर में किसी माता के द्वार पर पहुँचा। वहां पर उसने भिक्षा की आवाज लगाई, भगवति! भिक्षां देहि। माता भिक्षा लेकर द्वार पर आई। उसने भिक्षा तो दे दी परन्तु साधु जो से विनम्र प्रार्थना की महाराज! मेरी भी कुछ इच्छा हैं। आप सिद्ध पुरुष हैं। कृपा करके मेरी मनोकामना भी पूर्ण कर दीजिए। प्रभु दर्शन की मेरी अभिलाषा है। आप उसे पूरा करने में समर्थ है। कृपया मुझे प्रभु के दर्शन ..रवा दीजिए। महात्मा जी ऐसा सुनकर कुछ विचार में पड़ गये। सहसा

कहने लगे :—अच्छा मां ! मैं कल आऊंगा और तुम्हें भगवान् के दर्शन करवा दूँगा । माता ने प्रत्युत्तर में कहा, महाराज ! जब आप कल पधारेंगे ही तो भिक्षा भी मेरे यहां ही कर लीजिए, मैं भोजन तैय्यार कर दूँगी । साधु जी ने स्वीकृति दे दी और अपनी कुटिया पर लौट कर आगए । भोजनादि से निवृत होकर विचारने लगे कि उस मां को कैसे भगवान् के दर्शन करवाऊँ । वह भगवान् तो इन आखों से दिखाई नहीं देता । शास्त्रकार भी उसे इन्द्रियातीत कहते हैं । माता इन आखों से उस अतीन्द्रिय भगवान् के दर्शन करना चाहती है । कैसे करा पाऊँगा दर्शन । इस विचार धारा में महात्मा निमग्न हो गये । दूसरे दिन तक समस्या का समाधान नहीं हो सका । भोजन का समय हो जाने पर अपनी कुटिया से माता के घर की ओर चल पड़े । मार्ग में जाते हुए गोबर पर दृष्टि पड़ी । गोवर देखते ही समस्या का समाधान हो गया । उस गोवर को उन्होंने अपने कमण्डलु में भर लिया । और वहुत शीघ्रता से माता के द्वार पर पहुंच कर भिक्षा की आवाज लगाई । माता भोजनादि तैयार करने के पश्चात् बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रही थी । आवाज सुनते ही दोड़ी हुई बाहर आई और साधु जी से विनयपूर्वक बोली, भगवन् ! आप अन्दर पधारिए, भोजन कीजिए और तत्पश्चात् मुझे परमात्मा के दर्शन करवाईए । साधु जी महाराज बोले; माँ ! साधु अन्दर वैठकर भोजन नहीं करते । वे तो अपने कमण्डलु में भिक्षा मांगते हैं और कुटिया पर भोजन करते हैं । तू भोजन ले आ । हमारे भिक्षा पात्र में डाल दे । पुनः हम तुम्हें भगवान् के दर्शन करवायेंगे । माता शीघ्रता से अन्दर गई और एक थाली में श्रद्धापूर्वक बनाया हुआ सुन्दर भोजन परोस कर भिक्षा पात्र में डालने के लिए वाहर ले आई । साधु जी ने अपना भिक्षा पात्र आगे वढ़ा दिया । माता ज्योंही भोजन भिक्षा पात्र में डालने को हुई त्यों ही उसने देखा कि भिक्षा पात्र गोबर से भरा हुआ है । माता सहसा रुक गई और साधु जी महाराज से बोली, महाराज ! क्या आपका दिमाग तो ठीक है ? आपने इस पात्र में तो पहले से ही गोबर भर रखा है । यदि मैं इस पात्र में अपना पवित्र भोजन डाल देती तो यह भी दूषित हो जाता । महात्मा इस बात को सुनकर खिलखिला कर हंसे और माता से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया,

कि माँ ! तू अपना दो या चार रुपये का भोजन इस मेरे भिक्षा पात्र में इस लिये नहीं डालना चाहती कि यह गोवर पर पड़कर दूषित हो जाएगा तो तू ही वता कि तेरे मन रूपी भिक्षापात्र में जो जन्म जन्मान्तर की बुराईयों का गोवर भरा हुआ है उसमें मैं अपने सुन्दरतम अमूल्य भगवान् को कैसे उतार दूं । वस वृद्धामाता की समस्या का समाधान हो चुका था ।

इस दृष्टान्त के पश्चात् तो समझ में आता है कि उस भगवान् को पवित्र मन की भेंट मैं दे सकता हूँ । और वह मेरी इस भेंट को स्वीकार भी कर सकता है । इसलिए इस मन्त्र में आगे कहा गया :—"कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्" ऐ मेरी देह 'तू वता कि मैं कव उस आनन्द स्वरूप भनवान् को 'सुमना' पवित्र मन वाला और निरुद्ध मन वाला होकर देख सकूँगा ।

परब्रह्म परमात्मा का दर्शन तो सुमन ही करवा सकता है । पवित्र मन से उस परम पूजनीय भगवान् की आराधना हो सकती है । परन्तु जब किसी नवयुवक से प्रभु आराधना की वात कही जाती है तो वह कह उठता है कि अभी तो जवानी है, कमाने खाने का समय है । कमाने खाने तो दो । जब वृद्धावस्था आएगी तो जैसा तुम कहोगे वैसा ही कर लेवेंगे । प्रभुभजन की वात तो वृद्धावस्था की है उसे तुम जवानी में लाकर हमारे जीवन को नीरस बना देना चाहते हो ।

परन्तु यह उत्तर ठीक नहीं है । हमें परमात्मा को सुन्दर भेंट देनी है । क्या यह उचित है कि हम अपनी जवानी की भेंट तो विषय विकारों को दे देवें और सब रोगों का सदन बुढ़ापा उस प्रभु को अर्पित करें । नहीं २ हमें तो अपनी इस देह में रहते हुए उसके दर्शन करने हैं । परन्तु यदि यह देह जीर्ण-शीर्ण होगी, यदि इस देह के अंग प्रत्यंग में पीड़ाएं होंगी, यदि इस देह में खांसी उठेगी और समस्त रोग इस देह पर चील कौए की तरह आक्रमण करेंगे तो इस देह में स्वस्थ और सुमन कैसे रह सकेगा । और हम अपने सुमन की भेंट उस पर ब्रह्म परमात्मा को कैसे कर सकेंगे । यदि हमें सुमन भेंट करना है तो स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है, जो हमें युवा अवस्था में ही प्राप्त हो सकता है । इसी युवा अवस्था में ही हम योग साधन के द्वारा अष्टांग योग मार्ग का अवलम्बन लेते हुए, अपने मन को शुद्ध, पवित्र, एकाग्र और निरुद्ध कर सकते हैं ।

निरुद्ध मन ही पवित्र और ऋतम्भरा बुद्धि को प्रदान करने वाला है जिस बुद्धि को प्राप्त करके हम परब्रह्म परमात्मा का अनुभव कर सकते हैं, और अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।

अतः ऐ मेरी देह ! तू बता कि कब मैं उस वरुण भगवान् के अन्दर अपने आप को अवस्थित देखूँगा। तेरे बने रहते ही कब वह सुन्दर घड़ी मुझे प्राप्त होगी कि मेरी सुन्दर भेंट को वह कमनीय भगवान् स्वीकार करेंगे। कब मैं सुन्दर और निरुद्धमन वाला होकर उस वरुण भगवान् को देख सकूँगा। मैं तेरे स्वस्थ रहते ही स्वस्थ मन से उस वरुण भगवान् के दर्शन करना चाहता हूँ। तू ऐसी बनकर शीघ्र ही मेरे लिए ऐसा सौभाग्यशाली दिन ले आ।

प्रातः उठने के समय पढ़ने के मन्त्र

१—ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे,
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रात,
स्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ (ऋ० मं० ७/सू० ४१/मं० १)

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभातवेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्चर्य के दाता और परमैश्चर्ययुक्त (प्रातः) प्रातः काल (मित्रा वरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्व शक्तिमान् (प्रातः) प्रातःकाल (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं, और (प्रातः) प्रातःकाल (भगम्) भजनीय सेवनीय एश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले (प्रातः) प्रातःकाल (सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं, वैसे प्रातः तुम लोग भी किया करो ॥१॥

२—ओं प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वय पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता !
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजाचिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥
(ऋ० मं० ७/सू० ४१/मं० २)

अर्थः—(प्रातः) पाँच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्चर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने

और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों को (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारणकर्त्ता (यंचित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी दण्ड दाता और (राजा) सब का प्रकाशक है, (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ, और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको (आह) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूँ, उस मुझ की उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो, जिस से तुम लोग सदा उन्नति शील रहो, इस से (वयम्) हम लोग उस की (हुवेम) स्तुति करते हैं ।.२॥

३—ओं भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥
(ऋ० मं० ७/सू० ४१ म० ३)

अर्थः—हे (भग) भजनीय स्वरूप (प्रणेतः) सब के उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्यधन को देने हारे (भग) सत्याचरण करने हारों का ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर ! (नः) हम को (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिए और उस के दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिए. (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग राज्य श्री को (नः) हमारे लिए (प्रजनय) प्रकट कीजिए, हे (भग) आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्य वाले (प्रस्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥३॥

४—ओं उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वय देवानां सुमतौ स्याम ॥
(ऋ० मं० ७/सू० ४१/म० ४)

अर्थः—हे भगवन् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इस समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता, उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्षयुक्त शक्तिमान् (स्याम) होवें, (उत) और हे (मघवन्) परम पूजित असंख्य धन देने हारे ! (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की

(सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥४॥

५—ओं भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्वाम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति सनो भग पुर एता भवेह ॥५॥
(ऋ० मं० ७/सू०/ मं०५)

अर्थः—हे (भग) सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर ! जिस से (तम्) उस (त्वा) आप की (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं, (सः) सो आप के (भग) ऐश्वर्यप्रद ! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुर एता) अग्रगामी और आगे २ सत्य कामों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिए, और जिस से (भग-एव) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिए, (तेन) उसी हेतु से (देवाः वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्य सम्पन्न हो के सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत (स्याम) होंवे ॥५॥

———

ओ३म्
वैदिक सन्ध्या (ब्रह्म यज्ञ)

गायत्री मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।। (इस मन्त्र से शिखा बाँधें)

(१) गायत्री मन्त्र—हे प्राणों के प्राण, दुःख विनाशक, सुख-स्वरूप परमात्मन् । आप सकल जगदुत्पादक, सर्वश्रेष्ठ, पापविनाशक और दिव्य गुणों के केन्द्र हैं, हम आपका ध्यान करते हैं । आप हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित कीजिये ।

आचमन मन्त्र

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ।।

(इस मन्त्र से तीन आचमन करें)

(२) ओं शन्नोदेवीरिति—दिव्य गुण युक्त, सर्वप्रकाशक सर्वानन्द प्रद परमात्मा अभीष्ट आनन्द की प्राप्ति तथा पूर्णानन्द द्वारा तृप्ति के लिये हमारे लिये कल्याणकारी हों तथा वह परमेश्वर हम पर चारों तरफ से सुख की वर्षा करें ।

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रं । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतल करपृष्ठे ।।

(इस मन्त्र से क्रमशः शरीर के अंगों का जल से स्पर्श करें)

(३) ओं वाक् वागिति—हे ईश्वर ! मेरी वाणी, प्राण, नेत्र, कान, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर और भुजाओं में यश और बल हो तथा मेरे हाथ धर्मयुक्त कार्य करें ।

मार्जन मन्त्र

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥ (इस मन्त्र से क्रमशः शरीर के अंगों पर जल से मार्जन करें)

(४) ओं भूः पुनात्विति—हे प्राणों के प्राण, दु:ख विनाशक, सुखस्वरूप, सबसे महान्, सर्वोत्पादक, परम तपस्वी, सत्यस्वरूप तथा सर्वव्यापक प्रभो! आप कृपा करके क्रमशः मेरे शिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, पांव आदि सब अंगों को पवित्र और बलवान् कीजिये।

प्राणायाम मन्त्र

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥ (इस मन्त्र से कम से कम तीन प्राणायाम अवश्य करें)

ओं भूरिति—हे ईश्वर! आप सच्चिदानन्द स्वरूप, सबसे महान् सर्वजगतोत्पादक, ज्ञानस्वरूप तथा अविनाशी हैं।

अघमर्षण मन्त्र

१ ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥

ओं ऋतंचेति—भगवान् के प्रदीप्त ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से वेद तथा कारणरूप प्रकृति कार्यरूप में प्रकट हुए। उसी के सामर्थ्य से यह जगत् भी महाप्रलय रूप रात्रि में परिवर्तित होता है। समुद्र व अन्तरिक्ष का निर्माण भी उसी ने किया।

२ ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतोवशी॥

ओं समुद्रेति—सकल जगत् के नियन्ता भगवान् ने जलों के पश्चात् समय का विभाग, वर्ष दिन व रात विभाग को पूर्व सृष्टि के अनुसार बनाया।

३ ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥

(इन मन्त्रों से अघमर्षण करें अर्थात् पापानुष्ठान सर्वथा छोड़ देवें)

ओं सूर्याचन्द्रमसाविति—सबको धारण करने वाले परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र,

द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा सब लोक लोकान्तरों को पहले कल्प के समान ही बनाया।

(इसके पश्चात् (ओं शन्नोदेवीरिति) इस मन्त्र से ३ बार आचमन करके मन में गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थों का मनन करें।)

ओं शन्नोदेवीरिति—(इसका अर्थ पहले दिया जा चुका है)

मनसा परिक्रमा मन्त्र

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

ओं प्राचीति—प्राची दिशा का स्वामी ज्ञानस्वरूप बन्धन रहित परमात्मा हमारा रक्षक है तथा किरणों व प्राणरूप साधनों से समस्त संसार की रक्षा करता है। रक्षा करने, प्रकाश और ज्ञानादि प्रदान के लिये परमात्मा को बारम्बार नमस्कार हो। जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं उसको आपके न्याय रूपी सामर्थ्य पर छोड़ते हैं।

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

ओं दक्षिणेति—दक्षिण दिशा का स्वामी परमैश्वर्ययुक्त, चराचर प्राणियों में प्रकाशमान हमारी रक्षा करने वाला है। वह ज्ञानियों द्वारा ज्ञान प्राप्त कराता है। (शेष पूर्ववत्)

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

ओं प्रतीची दिगिति—वरने योग्य परमात्मा पश्चिम दिशा का स्वामी बड़े-बड़े विषैले प्राणियों से हमारी रक्षा करता है तथा अन्न द्वारा हमें जीवन दान देता है। (शेष पूर्ववत्)

ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

ओं उदीची दिगिति—उत्तर दिशा का स्वामी शान्ति का भण्डार तथा स्वयम्भू परमात्मा विद्युत् द्वारा समस्त संसार की रक्षा करता है। (शेष पूर्ववत्)

ओं ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

ओं ध्रुवेति—नीची दिशा का स्वामी सर्वव्यापक परमात्मा हरे रंग वाले वृक्षों, लताओं और औषधियों द्वारा हमारी रक्षा करता है। (शेष पूर्ववत्)

ओं ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

ओं ऊर्ध्वादिगिति—ऊपर की दिशा का स्वामी सब राजों का राजा हमारा रक्षक है। वह परमात्मा आनन्दरूप साधनों से समस्त संसार की रक्षा करता है। (शेष पूर्ववत्)

उपस्थान मन्त्र

ओं उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

ओं उद्वयमिति—हे सुखस्वरूप परमेश्वर! आप अन्धकार से परे दिव्य गुणों से युक्त सर्वत्र विद्यमान हैं। आपकी उत्तम ज्योति को हम प्राप्त होवें।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशेविश्वाय सूर्यम् ॥२॥

ओं उदुत्यमिति—हे परमात्मन् आप सर्वज्ञ, वेदों के उत्पादक तथा प्रकाश स्वरूप हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु आपकी महिमा दिखाने के लिये झण्डी का काम देती है।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥

ओं चित्रमिति—वह परमात्मा दिव्यगुण युक्त अद्भुत, प्रकाशरूप सब स्थावर जंगम जगत् की आत्मा है तथा द्यु, पृथ्वी, अन्तरिक्ष आदि समस्त पदार्थों में परिपूर्ण होकर उनकी रक्षा करता है। सर्वथा द्रोहरहित श्रेष्ठ विद्वान् और अग्नि का भी प्रकाशक और सत्योपदेष्टा है वह गुण युक्त विद्वानों के हृदय में ही उत्कृष्ट रूप में प्रकाशित होता है।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥

ओं तच्चक्षुरिति—हे सर्वद्रष्टा भगवन् ! आप धर्मात्मा विद्वानों के हितकारी तथा शुद्धस्वरूप हैं। भगवन् आपकी आज्ञा से हम सौ वर्ष जीवें, अपने कानों से सौ वर्ष वेदवाणी सुनें आपके रचे हुये प्राकृतिक सौन्दर्य को सौ वर्ष पर्यन्त भली-भांति देखें। सौ वर्ष हम जिह्वा से आपका गुणानुवाद गावें। कभी भी पराधीन न होकर इससे भी अधिक आयु प्राप्त कर इसी प्रकार रहें।

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

गायत्री मन्त्र—अर्थ पूर्व दिया जा चुका है।

समर्पण

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

समर्पण—हे करुणा के भण्डार परमात्मन् ! आप की कृपा से इस जप, उपासना आदि कर्म से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शीघ्र ही सिद्धि हो जावे।

नमस्कार मन्त्र

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।

नमस्कार मन्त्र—जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों का देने वाला कल्याण का कर्त्ता तथा अपने भक्तों को सुख देने वाला, अत्यन्त मंगलस्वरूप तथा धार्मिक पुरुषों को मुक्ति देने वाला है, उसको हमारा बारम्बार नमस्कार हो। हे प्रभो ! हमारे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों ताप शान्त हों।

ब्रह्मस्तोत्र

१—एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधायः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः, तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।

अर्थ—प्रभो ! तुम एक हो, सारे ब्रह्माण्ड को वश में करने वाले हो, सब प्राणियों के अन्तःकरण में विराजमान हो । एक प्रकृति से नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करते हो, जो धीर, विद्वान्, योगीपुरुष आप को अपनी आत्मा में स्थित देखते हैं; उन्हीं को सच्चा सुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं ।

२—नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम्,
एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः,
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।

अर्थ—हे प्रभो ! आप नित्यों में नित्य हैं, चेतनों में चेतन हैं, आप बहुतों में एक हैं, आप भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । आपको जो लोग अपनी आत्मा में स्थित, साक्षात् देखते हैं, उनको निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं ।

३—न तत्र भाति सूर्यो न चन्द्रतारकम्, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

अर्थ—हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! आपके प्रकाश के तुल्य न तो सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमा और तारों का और न ही बिजली का । अग्नि का तो कहना ही क्या ? आपके प्रकाश से ही ये सब प्रकाश वाले हैं; आप स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं ।

४—ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म, पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्म, एवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।

अर्थ—प्रभो ! आप सबसे बड़े, नित्य स्वरूप हैं, आप सर्वत्र व्यापक हैं । आगे, पीछे, दाएँ-बाएँ, नीचे-ऊपर सब जगह फैले हुए हैं । सारे संसार में सबसे उत्तम आप ही हैं ।

५—इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद् वयम्, न चेदवेदीर्महती विनष्टिः ।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति, अथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥

अर्थ—प्रभो ! इसी जन्म के अन्दर यदि हम आपको साक्षात् कर लेवें तो अच्छी बात है, अन्यथा महान् अनर्थ होगा । जो जन आपको जान जाते हैं, वे अमर हो जाते हैं और दूसरे दुःख के भागी बनते हैं ।

६—अपाणिपादो जवनो गृहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

अर्थ—प्रभो ! आपके न हाथ हैं, न पांव हैं, परन्तु आप सबको ग्रहण करने वाले हैं और सबसे अधिक वेग वाले हैं । आपकी आंखें नहीं हैं, परन्तु सब कुछ देखते हैं । आपके कान नहीं, परन्तु सब कुछ सुनते हैं । आप सबको जानते हैं, परन्तु आपको पूर्णतया जानने वाला कोई नहीं । आप ही सबके नेता, महाप्रभु और सर्वशक्तिमान् हैं ।

७—अणोरणीयान् महतो महीयान्, आत्मा गुहायां निहितोऽस्यजन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥

अर्थ—प्रभो ! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं । आप महान् से महान् हैं । जीवात्मा के भीतर छिपे हुए हैं । दयामय ! आपकी दया से ही आपके शुभदर्शन हो सकते हैं; अन्यथा नहीं ।

८—सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये, विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं, ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥

अर्थ—प्रभो ! संसार में आप अति सूक्ष्म हैं । अनेकरूप संसार के स्रष्टा हैं, सारे ब्रह्माण्ड को घेरे हुए हैं । आपको जानकर ही हम सच्ची शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं ।

९—स एव काले भुवनस्य गोप्ता, विश्वस्याधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवाश्च, तमेव ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥
(श्वेत ४/१५)

अर्थ—सर्वपालक प्रभो ! आप ही समय पर सबकी रक्षा करते हैं । आप ही सबके स्वामी हैं । आप सब प्राणियों के अन्दर हैं । ऋषि मुनि और योगाभ्यासी आपका ही ध्यान करते हैं, आपको जानकर ही मृत्यु के जाल को काटने में समर्थ होते हैं ।

१०—एष देवो विश्वकर्मा महात्मा, सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो, य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥
(श्वेत ४/१७)

अर्थ—दिव्य स्वरूप ! आप सकल जगत् को बनाने वाले हैं। आप सबसे महान् सदा सबके हृदय में वास करते हैं। जो बुद्धिमान् हृदय और मन से आपकी खोज करते हैं, वे अमर पद को प्राप्त करते हैं।

११—न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनम्, एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

अर्थ—निराकार प्रभो ! आपका कोई रूप नहीं, आपको इन आंखों से कोई नहीं देख सकता। जो हृदय में आपको मन द्वारा जानते हैं, वही अमर हो जाते हैं।

१२—न तस्य कार्यं करणं च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च ॥

अर्थ—प्रभो ! आप स्वयं सब काम कर सकते हैं। दूसरों की सहायता की आपको आवश्यकता नहीं पड़ती। आपके तुल्य इस संसार में कोई नहीं, तो आपसे अधिक कौन हो सकता है ? जो आपकी अद्भुत शक्ति है, नाना प्रकार से वह प्रकट हो रही है। आप में ज्ञान, बल तथा काम करने की शक्ति स्वभाव से ही है।

१३—एको देवः सर्वभूतेषुगूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलोनिर्गुणश्च ॥

अर्थ—प्रभो ! आप एक हैं, दिव्य स्वरूप हैं, सबमें व्यापक हैं, सबको कर्मों का फल देने वाले हैं, सर्वस्रष्टा हैं, केवल सुखरूप, चेतनस्वरूप और निर्गुण हैं।

१४—नमस्ते सते ते जगत् कारणाय, नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥

अर्थ—हे सदा रहने वाले, जगत् के कारण प्रभो ? तुझे नमस्कार हो। सर्वलोक के आश्रय, चेतनस्वरूप ! तुझे प्रणाम हो। सुखस्वरूप, मुक्ति के दाता ! तुझे हम नमस्कार करते हैं। हे सर्वव्यापक, परब्रह्म ! तुझे हमारा बार-बार प्रणाम हो।

१५—त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥

अर्थ—प्रभो ! आप ही हमारी रक्षा करने वाले हैं, आप ही श्रेष्ठ हैं, आप ही जगत् के पालक और स्वप्रकाशक हैं। परमात्मन् ! आप ही अकेले जगत्-कर्त्ता, रक्षक और संहारकर्त्ता हैं। आप ही सबसे बड़े, अचल और विकार रहित हैं।

१६—भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणीनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥

अर्थ—परमात्मन् ! आप भयों को भय देने वाले हैं। आप ही हमारी गति हैं। पवित्रों के पवित्रकर्त्ता आप हैं। आप महाराजों के महाराज हैं, परे से भी परे हैं और रक्षा करने वालों के भी रक्षक हैं।

१७—वयं त्वां स्मरामो, वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

अर्थ—परमात्मन् ! हम आपको ही स्मरण करते रहें। आपका ही भजन करें। हम आपको ही सबका साक्षी मानकर पूजें। आप एक हैं। आप सबके आधार हैं और अपने आधार भी स्वयं ही हैं। संसाररूपी समुद्र में रक्षा करने वाले पोत (जहाज) आप ही हैं। हे प्रभो ! हम आपको ही प्राप्त हों।

१८—न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके, न चेशिता नैव च तस्यलिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो, न चास्य कश्चित् जनिता न चाधिपः॥

अर्थ—परमात्मन् ! आपका इस लोक में कोई पालक नहीं, न कोई शासक है। न ही आपकी मूर्ति है। आप कारणों के भी कारण हैं। आपका कोई उत्पादक नहीं है।

१९—तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्, तं देवतानां परमं ही दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्, विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

अर्थ—प्रभो ! आप महेश्वरों के भी महेश्वर हैं। देवताओं के भी आप पूजनीय हैं। आप पतियों के भी अधिपति हैं। हे सर्वजगत् के शासक ! हम आपकी स्तुति तथा उपकारों का गान और चिन्तन सदा करते ही रहें।

२०– त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

अर्थ—भगवन् ! आप ही हमारे माता पिता हैं, आप ही हमारे बन्धु और सखा हैं । स्वामिन् ! आप ही हमारी विद्या तथा धन हैं । हे नाथ ! आप ही मेरे सर्वस्व हैं और आप ही पूजनीय उपास्यदेव हैं । आपके स्थान पर किस अन्य का मैं भूलकर भी पूजन न करूँ ।

अथ देव यज्ञ

आचमन मन्त्र

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।।१।।
ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।२।।
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।३।।

(इन मन्त्रों से तीन आचमन करें)

हे अमृत ! तू नीचे का बिछौना है, यह कथन सत्य है ।।१।। हे अमृत ! तू ऊपर का ओढ़ना है, यह कथन सत्य व शोभायुक्त है ।।२।। मुझ में सत्य, यश और श्री, आश्रय रूप में स्थित हों, वह कथन भी सत्य और शोभायुक्त है ।।३।।

अंग स्पर्श मार्जन विधि

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु । (इस मन्त्र से मुख)
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु । (इससे नासिका के दोनों छिद्र)
ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । (इससे दोनों आँख)
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । (इससे दोनों कान)
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु । (इससे दोनों बाहु)
ओं उर्वोर्मऽओजोऽस्तु । (इससे दोनों जंघा) जल से स्पर्श करें तथा
ओं अरिष्टानिमेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।।

(इस मन्त्र से जल स्पर्श करके मार्जन करें)

मेरे मुख में वाक् शक्ति, नासिका में प्राण शक्ति, आँखों में दर्शन शक्ति, कानों में श्रवण शक्ति, भुजाओं में यश और बल, जंघाओं में ओज तथा शरीर और शरीर के सब अंगों में निरोगता निवास करे ।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः

१—ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दु रितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ (यजु० ३०/३)

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये । (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं, (तत्) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त कराइए ।

२—ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(यजु० २५/१०)

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुये सम्पूर्ण जगत् का (ज्ञातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि का (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) भक्ति विशेष किया करें ।

२—ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(यजु० २५/१३)

अर्थ—(यः) जो (आत्मदा) आत्मज्ञान का दाता, (बलदा) शरीर, आत्मा और समाज के बल को देने हारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं, और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका (छ.या) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुख

स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

४—ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० २५/११)

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणी रूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) राजा (बभूव) विराजमान है, (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके (विधेम) भक्ति विशेष करें।

५—ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० ३२/६)

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्यादि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण किया, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया, और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों को निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

६—ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥
(ऋ० मं० १०/सू० १२१, मं० १०)

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुये

भूगोलादि जगत् को बनाने हारा और (परिता) व्यापक न) नहीं (बभूव) है, (ते) उस आप के भक्ति करने हारे हम चेतनादिकों को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होके हम लोग भक्ति करें (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेव और वाञ्छा करें (तत्) उस उस की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः स्वामी (स्याम) होवें।

७—ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥

(यजु० ३२/१०)

अर्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोक मात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है, और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशाना) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें।

८—ओ३म् अग्नेनय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नम उक्तिं विधेम॥ (यजु० ४०/१६)

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्म युक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइए और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये,

इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुति रूप (नमः उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना प्रकरणम् ॥

अग्न्याधान मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः।

(इस मन्त्र से कड़छी में धरे कपूर में अग्नि प्रज्वलित करें)

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिवभूम्नापृथिवीवद्वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥

(इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को स्थापित करें)

अग्न्याधान मन्त्र—वह परमात्मा प्राणों का प्राण, दुःख विनाशक और सुख स्वरूप है तथा पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों में विद्यमान है। वह आकाश के समान व्यापक तथा पृथ्वी के समान श्रेष्ठ है। हे विद्वद्-यज्ञस्थली पृथ्वी, तुम्हारे पृष्ठ पर इस अन्नाद अग्नि का, अन्नादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये आधान करता हूँ।

अग्नि प्रदीपन मन्त्र

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥२॥

(इस मन्त्र से अग्नि पर छोटी-छोटी समिधायें रखकर अग्नि प्रदीप्त करें)

ओं उद्बुध्यस्वेतिः—हे अग्ने! तुम प्रदीप्त और जागृत होकर मुझ यजमान को भी जागृत करो। यह यजमान तुम्हारे द्वारा इष्ट और आपूर्त कर्म करने में सफल हो। इस उत्कृष्ट समान स्तर वाले वेदी स्थान पर समस्त विद्वान् और यजमान बैठें।

समिदाधान मन्त्र

(चन्दन की अथवा पलाश की आठ २ अंगुल लम्बी तीन समिधायें घृत में भिगोकर क्रमशः निम्नलिखित मन्त्रों से अग्नि-कुण्ड में डालें)

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥१॥

ओं अयन्तः—हे सर्वत्र विराजमान् अग्ने ! यह समिधा तुम्हारी आत्मा है इससे तुम प्रदीप्त, समृद्ध तथा तीव्र हो। स्वयं समृद्ध बन कर हमें भी प्रजा पशु ब्रह्मवर्चस् व अन्नादि सांसारिक अभ्युदय में समृद्ध बनाओ तथा सुदीप्त करो यही हमारी अभिलाषा है। यह सब उस जातवेद अग्नि को ही समर्पित है इसमें मेरा स्वार्थ कुछ नहीं।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन्हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम ॥२॥

(इस मन्त्र से तथा—)

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥३॥

(इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा डालें)

ओं समिधाग्निः—समिधा से अग्नि को दीप्त करो तथा घृत से सत्कार योग्य अग्नि को तीव्र करो। फिर इस तीव्र अग्नि में हवि की यथाविधि आहुतियां दो। यही उत्तम विधान है। यह सब उस अग्नि को ही समर्पित है। इसमें यजमान का स्वार्थ नहीं।

ओं सुसमिद्धायः—अच्छी तरह तीव्र रूप में सुदीप्त सर्वत्र विद्यमान अग्नि की ज्वालाओं में तीव्र किये हुये घी की आहुतियाँ दो। यह जातवेद अग्नि के लिये समर्पित है इसमें यजमान का ममत्व नहीं यही उत्तम विधान है।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसेइदन्नमम ॥४॥

(इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें)

ओं तन्त्वाः—हे सर्वत्र प्राप्त, महान् ज्वालाओं से देदीप्यमान, सत्करणीय अग्ने ! हम सब समिधाओं और घृत से तुझको इसी प्रकार बढ़ाया करें यही हमारी प्रार्थना है। यह सब सुखप्रद अग्नि के लिए समर्पित है इसमें हमारा कोई ममत्व नहीं।

पाँच घृताहुति मन्त्र

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

(इस मन्त्र को ५ बार बोलकर ५ घृत की आहुति देवें)

ओं अयन्तः—(इसका अर्थ दिया जा चुका है)।

जल प्रसेचन मन्त्र

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥१॥ (इससे पूर्व में जल छिडकें)

ओं अदितेः—हे अखण्ड एकरस परमात्मन्! आप हमें अनुकूल मति प्रदान करें।

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥२॥ (इससे पश्चिम में)

ओं अनुमतेः—हे अनुकूल मति के दाता प्रभो! आप हमें अनुकूल मति दीजिये।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥३॥ (तथा इससे उत्तर में जल छिड़कें)

ओं सरस्वत्यः—हे ज्ञान स्वरूप प्रभो! आप हमें अनुकूल मति दीजिये।

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥४॥

(इस मन्त्र से चारों दिशाओं में जल डालें)

ओं देव सवितः—हे प्रकाशस्वरूप, सबके उत्पादक भगवन्! आप यज्ञ को सफल कीजिये। यजमान को ऐश्वर्य के लिये बढ़ाइये। तेजस्वी, वेदवाणी का धारक बुद्धि को पवित्र करने वाला ईश्वर हमारी बुद्धि को पवित्र करे। वाणी का रक्षक भगवान् हमारी वाणी को माधुर्य से युक्त करे।

आघारावाज्याहुति

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम ॥१॥

(इस मन्त्र से वेदी के उत्तर में आहुति देवें)

ओं अग्नयेः—यह प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिये समर्पित है। इसमें मेरा ममत्व नहीं है।

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्नमम ॥२॥

(इस मन्त्र से दक्षिण में)

ओं सोमायः—यह शान्ति के भण्डार परमात्मा के लिये है मेरे लिये नहीं।

'आज्यभागाहुति'

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥१॥

ओं प्रजापतये:—यह प्रजापालक ईश्वर के लिये है । मेरे लिये नहीं ।

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदं इन्द्राय इदन्नमम ॥२॥

(इन दो मन्त्रों से मध्य में आहुति देवें)

ओं इन्द्राय:—यह परमैश्वर्यवान् परमात्मा के लिये है मेरे लिये नहीं ।

दैनिक यज्ञ

'प्रातःकाल आहुति के मन्त्र'

(निम्नलिखित मन्त्रों से घी के साथ सामग्री की आहुतियाँ भी देवें)

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥

ओं सूर्यो:—इस सूर्य के समान वह परमात्मा भी प्रकाशमान है ।

ओं सूर्यो वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं सूर्यो वर्चो:—सूर्य के समान सर्वत्र व्यापक भगवान् भी शक्तिमय और प्राणमय है ।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्योज्योतिः स्वाहा ॥३॥

ओं ज्योतिः—सूर्य प्रकाशमान है । हे भगवन् ! आप भी प्रकाशपुंज हैं ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

ओं सजूर्देवेनः—जिस प्रकार सूर्य अपनी दिव्य प्राणमयी शक्ति एवं ऐश्वर्यमयी उषा के साथ हमें नित्य प्रति प्राप्त होता है उसी प्रकार आप भी अपनी ऐश्वर्यमयी प्राण शक्ति के साथ हमें सदैव प्राप्त हों ।

"प्रातः और सायं दोनों काल के मन्त्र"

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥१॥

ओं भूः—प्राण प्रिय, अग्नि तथा प्राण रूप आपके लिये सब समर्पित है यह सब आपके लिये है मेरे लिये नहीं ।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय इदन्नमम ॥२॥

ओं भुवः—दुःख दूर करने वाले, सर्वव्यापक तथा दुरितों को दूर करने वाले परमात्मा के लिये यह सब समर्पित है । मेरे लिये नहीं ।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय इदन्नमम ॥३॥

ओं स्वः—सुख स्वरूप, अविनाशी तथा समस्त संसार को गति देने वाले परमात्मा के लिये यह समर्पित है। मेरे लिये नहीं।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्नमम ॥४॥

ओं भूः—प्राणों के प्राण, दुःख विनाशक और सुखस्वरूप प्रभु के लिए, अग्नि, वायु और सूर्य की अनुकूलता के लिए, प्राण, अपान और व्यान की अनुकूलता के लिए यह सुन्दर आहुति है। यह मेरे लिए नहीं है।

ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओं आपोः—हे ओ३म्! आप सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप, आनन्दस्वरूप अविनाशी, सबसे महान्, सर्वाधार, दुःखविनाशक, कल्याणस्वरूप तथा सबकी रक्षा करने वाले हो। यह मेरी सत्योक्ति है।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥

ओं यांः—हे सर्व रक्षक तथा ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! समस्त देवगण तथा पितरगण जिस मेधा बुद्धि से युक्त हैं, उसी मेधा बुद्धि से मुझे भी आज ही मेधावी बनाइये। यही मेरी प्रार्थना है।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥

ओं विश्वानिः तथा ओं अग्नेः—इन दोनों मन्त्रों के अर्थ पूर्व दिये जा चुके हैं।

सायं कालीन हवन के मन्त्र

१. ओं अग्नये स्वाहा ॥
२. ओं सोमाय स्वाहा ॥
३. ओं प्रजापतये स्वाहा ॥
४. ओं इन्द्राय स्वाहा ॥
५. ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥
६. ओं अग्निर्वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥

७. ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ (मौनाहुति)
८. ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥
९. ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥
१०. ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥
११. ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥
१२. ओं भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा ॥
१३. ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥
१४. ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥१॥
१५. ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥२॥
१६. ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥३॥

अन्य प्रार्थना

ओं तनूपाऽग्नेऽसि तन्वम्मेपाहि ।
ओं आयुर्दाऽग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।
ओं वर्चोदाऽग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
ओं अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ।
ओं तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
ओं वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
ओं बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओं ओजोऽस्योजोमयि धेहि ।
ओं मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि ।
ओं यत्तेऽग्ने तेजस्तेनाऽहं तेजस्वी भूयासम् ।
ओं यत्तेऽग्ने वर्चस्तेनाऽहं वर्चस्वी भूयासम् ।
ओं यत्तेऽग्नेहरस्तेनाऽहं हरस्वी भूयासम् ।
ओं मेधां मे सविता आदधातु ।
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ।
ओं मेधां मे अश्विनौ देवावधत्तां पुष्कर स्रजौ ।

'यज्ञरूप की प्रार्थना'

यज्ञरूप प्रभो हमारे भांव उज्ज्वल कीजिये ।
छोड़ देवें छलकपट को मानसिक बल दीजिये ॥
वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें ।
हर्ष में हों मग्न सारे शोकसागर से तरें ॥
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को ।
धर्म मर्यादा चला कर लाभ दें संसार को ॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें ।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥
भावना मिट जाए मन से पाप अत्याचार की ।
कामनायें पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की ॥
लाभकारी हो हवन हर प्राणधारी के लिये ।
वायु जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किये ॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो ।
इदन्नमम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे ।
'नाथ' करुणा रूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥

(श्री लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति)

'कामना'

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ।।
सुखी बसे संसार सब दुःखिया रहे न कोय ।
यह अभिलाषा हम सबकी मेरे भगवन् पूरी होय ।।
विद्या बुद्धि तेज बल सबके भीतर होय ।
दूध पूत धन धान्य से वंचित रहे न कोय ।।
आप की भक्ति प्रेम से मन होवे भरपूर ।
राग द्वेष से चित्त मेरा कोसों भागे दूर ।।
मिले भरोसा आपका सदा हमें जगदीश ।
आशा तेरे धाम की बनी रहे मम ईश ।।
पाप से हमें बचाइये करके दया दयाल ।
अपना भक्त बनाइए हमको करो निहाल ।।
दिल में दया उदारता मन में प्रेम अपार ।
हिये में धीरज वीरता सब को दो करतार ।।

नामकरण के समय बालक को आशीर्वाद

"हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः"
"हे बालक ! तू आयुष्मान्, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, और श्रीमान् हो ॥"

चूड़ा कर्म एवं निष्क्रमण संस्कार में बालक को आशीर्वाद

"त्व जीव शरदः शतं वर्धमानः"

अन्नप्राशन में आशीर्वाद

"त्वमन्न पतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः"

उपनयन संस्कार में बालक को आशीर्वाद

"ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः ।"

विवाह संस्कार में आशीर्वाद

"ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु"
"ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति"

सामान्य आशीर्वाद

"ओं सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः"

पूर्णिमा व अमावस्या की विशेष आहुतियां

पूर्णिमा के दिन

ओं अग्नये स्वाहा ।
ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ।
ओं विष्णवे स्वाहा ।

अमावस्या के दिन

ओं अग्नये स्वाहा ।
ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ।
ओं विष्णवे स्वाहा ।
इनके पश्चात् 'भूरग्नये स्वाहा' आदि से चार घृताहुति देवें ।

स्वाध्याय

१—ओं यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

(अथर्व० १०।७।३२)

भावार्थ—भूमि जिस का पैर है और अन्तरिक्ष उदर है, द्युलोक को जिसने अपना सिर बनाया है, उस महान् ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

२—ओं यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥२॥

(अथर्व० १०।७।३३)

भावार्थ—सूर्य और वार-वार नया होने वाला चन्द्रमा जिस का नेत्र है, अग्नि को जिस ने अपना मुख बनाया है, उस परम ब्रह्म को हमारा प्रमाण है ।

३—ओं यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानी स्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३॥

(अथर्व० १०।७।३४)

भावार्थ—वायु जिसका श्वास प्रश्वास है, अङ्गिरस (प्रकाश मान किरण वाली) जिस का नेत्र है, दिशाओं को जिसने ज्ञान का साधक (श्रोत्र) बनाया हैं, उस परम ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

४—ओं यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥४॥

(अथर्व १०।८।१)

भावार्थ—जो भूत और भविष्य सबका अधिष्ठाता है, जिसका अपना स्वरूप केवल प्रकाश और आनन्द है, उस महान् ब्रह्म को हमारा प्रणाम है ।

यजुर्वेद का ४० वां अध्याय

५—ओं ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

(यजु० ४०।१)

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (जगत्) चर-प्राणी मात्र (ईशा) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (वास्यम्) आच्छादन

करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है। (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किए हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर ॥५॥

६—ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजु० ४०।२)

पदार्थ—मनुष्य (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्त्तमान (त्वयि) तुझ (नरे) व्यवहारों को चलाने हारे जीवन के इच्छुक होते हुए (कर्म) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य कर्म (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता (इतः) इससे जो और प्रकार से (न, अस्ति) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है ॥६॥

७—ओं असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(यजु० ४०।३)

पदार्थ—जो (लोकाः) देखने वाले लोग (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) ज्ञान का श्रवण करने हारे अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढंपे हुए (च) और (ये) जो (के) कोई (आत्महनः) आत्मा के विरूद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्य्याः) अपने प्राण पोषण में तत्पर अविद्यादि दोष युक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पाप कर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध होते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख और अज्ञान रूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ॥७॥

८—ओं अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

(यजु० ४०।४)

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो! (जो) (एकम्) अद्वितीय (अनेजत्) नहीं कम्पने वाला अर्थात् अचल, अपनी अवस्था से हटना कम्पन कहाता है, उससे रहित

(मनसः) मन के वेग से भी (जवीयः) अति वेगवान् (पूर्वम्) सबसे आगे (अर्षत्) चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चलकर जावे वहां प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुँचता हुआ ब्रह्म है (एनत्) इस पूर्वोक्त ईश्वर को (देवाः) चक्षु आदि इन्द्रिय (न) नहीं (आप्नुवन्) प्राप्त होते (तत्) वह पर ब्रह्म अपने आप (तिष्ठत्) स्थिर हुआ अपनी अनन्त व्याप्ति से (धावतः) विषयो की ओर गिरते हुए (अन्यान्) आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मनवाणी आदि इन्द्रियों का (अति, एति) उल्लङ्घन कर जाता है (तस्मिन्) उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करने हारे वायु के तुल्य जीव (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है यह जानो ॥८॥

९—ओं तदेजति तन्नजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ (यजु० ४०।५)

पदार्थ—हे मनुष्यों ! (तत्) वह ब्रह्म (एजति) मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता (तत्) (न, एजति) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता (तत्) वह (दूरे) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् क्रोडों वर्ष में भी नहीं प्राप्त होता (तत्) वह (उ) ही (अन्तिके) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप (तत्) वह (अस्य) इस (सर्वस्य) सब जगत् वा जीवों के (अन्तः) भीतर (उ) और (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्तमान है ॥९॥

१०—ओं यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥ (यजु० ४०।६)

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् जन (आत्मन्) परमात्मा के भीतर (एव) ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी अप्राणियों को (अनु) (पश्यति) विद्या धर्म और योगाभ्यास करने के पश्चात् ध्यान दृष्टि से देखता है (तु) और जो सर्वभूतेषु) सब प्रकृत्यादि पदार्थों में (आत्मानम्) आत्मा को (च) भी देखता है वह विद्वान् (ततः) तिस पीछे (न) नहीं (विचिकित्सति) संशय को प्राप्त होता ऐसा तुम जानो ॥१०॥

११—ओं यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ (यजु० ४०।७)

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्मिन्) जिस परमात्मा, ज्ञान, विज्ञान वा धर्म में

(विजानतः) विशेष कर ध्यान दृष्टि से देखते हुए को (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणीमात्र (आत्म, एव) अपने तुल्य ही सुख दुःख वाले (अभूत्) होते हैं (तत्र) उस परमात्मा आदि में (एकत्वम्) अद्वितीय भाव को (अनुपश्यतः) अनुकूल योगाभ्यास से साक्षात् देखते हुए योगिजन को (कः) कौन (मोहः) मूढ़ावस्था और (कः) कौन (शोकः) शोक वा क्लेश होता है अर्थात् कुच्छ भी नहीं ॥११॥

१२—ओं स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ (यजु० ४०।८)

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्र रहित और नहीं छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के साथ सम्वन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता (परि-अगात्) सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वत्र (मनीषी) सब जीवों के मनो की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप जिस की सयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश, माता-पिता, गर्भवास, जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते, वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिए (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥१२॥

१३—ओं अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते !
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याꣳरता ॥ (यजु० ४०।६)

पदार्थ—(ये) जो लोग परमेश्वर को छोड़कर (असम्भूतिम्) अनादि अनुत्पन्न सत्व रज और तमोगुणमय प्रकृति रूप जड़ वस्तु को (उपासते) उपास्य-भाव से जानते हैं वे (अन्धम्, तमः) आवरण करने वाले अन्धकार को (प्रविशन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होते और (ये) जो (सम्भूत्याम्) महत्तत्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं (ते) वे (उ) वितर्क के

साथ (ततः) उससे (भूय इव) अधिक जैसे वैसे (तमः) अविद्या रूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

१४—ओं अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ (यजु० ४०।१०)

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (धीराणाम्) मेधावी योगी विद्वानों से जो वचन (शुश्रुम) सुनते हैं (ये) जो वे लोग (नः) हमारे प्रति (विचचक्षिरे) व्याख्यान-पूर्वक कहते हैं वे लोग (सम्भवात्) संयोग जन्म कार्य से (अन्यत्, एव) और ही कार्य व फल (आहुः) कहते हैं (असम्भवात्) उत्पन्न नहीं होने वाले कारण से (अन्यत्) और (आहुः) कहते हैं (इति) इस बात को तुम भी सुनो ॥१४॥

१५—ओं सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ (यजु० ४०।११)

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् (सम्भूतिम्) जिसमें सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्य रूप सृष्टि (च) और उसके गुण कर्म स्वभावों को तथा (विनाशम्) जिसमें पदार्थ नष्ट होते उस कारण रूप जगत (च) और उसके गुण कर्म स्वभावों को (सह) एक साथ (उभयम्) दोनों (तत्) उन कार्य और कारण स्वरूपों को (वेद) जानता है वह विद्वान् (विनाशेन) नित्य स्वरूप जाने हुए कारण के साथ (मृत्युम्) शरीर छूटने के दुःख से (तीर्त्वा) पार होकर (सम्भूत्या) शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप उत्पन्न हुई कार्य रूप धर्म में प्रवृत्त कराने वाली सृष्टि के साथ (अमृतम्) मोक्ष सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥१५॥

१६—ओं अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायाँ रताः ॥ (यजु० ४०।१२)

पदार्थः—(ये) जो मनुष्य (अविद्याम्) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुःख में सुख और अनात्मा शरीरादि में आत्म बुद्धि रूप अविद्या उसकी अर्थात् ज्ञानादि गुण रहित कारण रूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धम्, तमः) दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं और (ये) जो अपने आत्मा को पण्डित मानने वाले (विद्यायाम्) शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण में (रताः) रमण करते (ते) वे (उ) भी (ततः) उससे (भूय, इव) अधिकतर (तमः) अज्ञान रूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं ॥१६॥

१७—ओं अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽ अन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विच चक्षिरे ॥ (यजु० ४०।१३)

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग (नः) हमारे लिए (विच चक्षिरे) व्याख्यापूर्वक कहते थे (विद्यायाः) पूर्वोक्त विद्या का (अन्यत्) अन्य ही कार्य या फल (आहुः) कहते थे (अविद्यायाः) पूर्व मन्त्र से प्रतिपादन की अविद्या का (अन्यत्) अन्य फल (आहुः) कहते हैं इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्म ज्ञानी विद्वानों से (तत्) उस वचन को हम लोग (शुश्रुम) सुनते थे ऐसा जानो ॥१७॥

१८—ओं विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ (यजु० ४०।१४)

पदार्थः—(यः) जो विद्वान् (विद्याम्) पूर्वोक्त विद्या (च) और उसके सम्बन्धी साधन उपसाधनों (अविद्याम्) पूर्व कही अविद्या (च) और इसके उपयोगी साधन समूह को और (तत्) उस ध्यानगम्य मर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरुषार्थ से (मृत्युम्) मरण दुःख के भय को (तीर्त्वा) उल्लङ्घन कर (विद्यया) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उससे उत्पन्न हुए पदार्थ दर्शन-रूप विद्या से (अमृतम्) नाश रहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥१८॥

१९—ओं वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर स्कृतं स्मर ॥ (यजु० ४०।१५)

पदार्थः—हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव ! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नामवाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। इस संस्कार का (वायुः) धनञ्जयादि रूप वायु (अनिलम्) कारण रूप वायु को, कारण रूप वायु (अमृतम्) अविनाशी कारण को धारण करता (अथ) इसके अनन्तर (इदम्) यह (शरीरम्) नष्ट होने वाला सुख आदि का आश्रय शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्म होने वाला है, ऐसा जानो ॥१९॥

२०—ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
(यजु० ४०।१६)

हे (देव) दिव्य स्वरूप (अग्ने) प्रकाश स्वरूप करुणामय जगदीश्वर ! जिससे

हम लोग (ते) आपके लिए (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कारपूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें। इससे (विद्वान्) सबको जानने वाले आप (अस्मत्) हम लोगों से कुटिलता रूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिए (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान धन वा धन से हुए सुख के लिए (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिए ॥२०॥

२१—ओं हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥
(यजु० ४०।१७)

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (हिरण्मयेन) ज्योतिःस्वरूप (पात्रेण) रक्षक मुझसे (सत्यस्य) अविनाशी यथार्थ कारण के (अपिहितम्) अच्छादित (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम अङ्ग का प्रकाश किया जाता (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण वा सूर्यमण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्ष रूप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) सबसे गुण, कर्म और स्वरूप करके अधिक हूँ (ओ३म्) सबका रक्षक जो मैं उसका (ओ३म्) ऐसा नाम जानो ॥२१॥

भोजन के समय का मन्त्र

ओं अन्नापतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणाः।
प्र प्रदातार तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ (यजु० ११।८३)

पदार्थः—हे (अन्नपते) अन्नों के स्वामी परमात्मन् ! आप (नः) हमारे लिए (अनमीवस्य) रोगों के नाश से सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्र-प्रदेहि) अति प्रकर्ष के साथ दीजिए। और इस अन्न के (दातारम्) देने हारे को अर्थात् अन्नदान करने वाले को (तारिषः) तृप्त कर, दुःख से पार करके (नः) हमारे (द्विपदः) दो पग वाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चार पग वाले गौ आदि पशुओं के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण करवाइये।

शयन के समय पढ़ने के मन्त्र

१—ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥
(यजु० ३४।१)

अर्थः—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने व अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥१॥

२—ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥
(यजु० ३४।२)

अर्थः—हे परमेश्वर ! जब आपके संग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्म संयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला (प्रजानाम्) प्राणि मात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिव संकल्पम्) धर्मेष्ठ (अस्तु) होवे ॥२॥

३—ओं यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥
(यजु० ३४।६)

अर्थः—हे जगदीश्वर ! आपके जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्य स्वरूप (च) और लज्जा आदि कर्मों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाश रहित (ज्योतिः) प्रकाशक रूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) बिना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न-क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधन रूप मन (शिव संकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) हो ॥३॥

४—ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥
(यजु० ३४।४)

अर्थः—हे मनुष्यो ! (येन) जिस (अमृतेन) नाश रहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होने वाला (सर्वम्, इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है (येन) जिससे (सप्त होता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां, ये सात लेने देने वाले जिसमें हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञान रूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योग युक्त चित्त (शिव संकल्पम्) मोक्ष रूप संकल्प वाला (अस्तु) होवे ॥४॥

५—ओं यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यष्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥ (यजु० ३४।५)

अर्थः—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरे लगे होते है, वैसे (ऋ चः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यंजूषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद स्थित हैं (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्वपदार्थ सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रचार रूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥५॥

६—ओं सुषारथिरश्वानिव
यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभिशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः
शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥ (यजु० ३४।६)

अर्थः—(यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र शीघ्र इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रसियों से (वाजिनः) वेग वाले घोड़ों को सारथि वश में

करता वैसे नियम में रखता (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्था रहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मंगलमय नियम में इष्ट (अस्तु) होवे ॥६॥

भक्ति संगीत

भजन नं० १

भरोसा कर तू ईश्वर पर, तुझे धोखा नहीं होगा ।
यह जीवन बीत जाएगा, तुझे रोना नहीं होगा ॥१॥
कभी दुःख है कभी सुख है, यह जीवन धूप छाया है ।
हंसी में ही बिता डालो, बितानी ही यह माया है ॥२॥
जो सुख आये तो हंस देना, तो दुःख आये तो सह लेना ।
न कहना कुच्छ कभी जग से, प्रभु से ही तू कह लेता ॥३॥
ये कुच्छ भी तो नहीं जग में, तेरे बस कर्म की माया ।
तू खुद ही धूप में बैठा, लखे निज रूप की छाया ॥४॥
कहाँ यह था, कहाँ तू था, कभी तो सोच ओ बन्दे ।
झुका कर सीस को कह दे, प्रभु वन्दे प्रभु वन्दे ॥५॥ (तत्व ज्ञान से)

भजन नं० २

मोहे कौन बचावेगा, बिना तेरे दीन बन्धु ॥ टेक ॥
सुन्दर देह पर दाग लगाए, पग पग पगला ठोकर खाए ।
अब कौन उठावेगा, बिना तेरे दीन बन्धु ॥१॥
जोर का तूफाँ रैन अन्धेरी, भव सागर में नौका मेरी ।
पार कौन लगावेगा, बिना तेरे दीन बन्धु ॥२॥
छोड़ दे मनवा पाप के फन्दे, बीती बातें भूल जा बन्दे ।
वरना पछतावेगा, बिना तेरे दीन बन्धु ॥३॥
अब भी आजा सीधे पथ पर, मन काबू कर चढ़ जा रथ पर ।
रो रो दुःख पावेगा, बिना तेरे दीन बन्धु ॥४॥

भजन नं० ३ (बिन्दिया चमकेगी०)

गुणं गाऊँगा, मैं गुण गाऊँगा ।
जिसने रखनी है लाज, जो है सदा मेरे साथ ॥ मैं गुण

१. मोरे मनवा, तू है पुष्प धन्वा, पड़ा रहता विषयन में मोरे मनवा ।
मैं क्या जानूं, तू भटकाएगा, मुझको दुनिया में ।। मैं गुण
२. प्रभु तेरी रचना, बड़ी अनुपम है,
न पाया जाए पार इसका, तेरी रचना ।
तू कितना सुन्दरतम होगा ओ ! मेरे प्रियतम ।। मैं गुण
३. तू है दया सिन्धु, तू करुणा का सागर,
दया तेरी अपरम्पार, दया सिन्धु ।
तेरी ही करुणा विन्दु का मैं प्यासा हूँ चातक ।। मैं गुण (इन्द्र)

भजन नं० ४

ईश्वर को भी तू याद किया कर कभी कभी ।
आत्मिक तृषा को भी बुझा लिया कर कभी कभी ।।
१. दुनियाँ के झंझटों में पड़ ईश भुलाया ।
भूले हुए की याद किया कर कभी कभी ।।
२. उसकी कृपा से तूने, नर तन है यह पाया ।
धन्यवाद उस प्रभु का किया कर कभी कभी ।।
३. भोगों के भोगने में समय तूने विताया ।
भोगों के देने वाले को सिमरा कर कभी कभी ।।
४. जिस दिल में तू बसा, वह बड़ा खुश नसीब है ।
उस पर तेरी कृपा भी होती है कभी कभी ।।
५. ईश्वर की रचना देख कर–होती है हैरानी ।
खो जाया कर तू 'इन्द्र' उसी में कभी कभी ।। (इन्द्र)

भजन नं० ५

प्रीत तुम से लगी–दुनियाँ से प्यार कोन करे ।
कोई कुच्छ भी कहे–इसका विचार कोन करे ।।
१. मन है सुन्दर तो रूप रंग सभी सुन्दर है ।
व्यर्थ अस्थिर यह ऊपरी श्रृंगार कोन करे ।।
२. छोड़ दी तेरे भरोसे ही भंवर में नैय्या ।
मूढ़ मांझी की विनय बार बार कोन करे ।।
३. बन गई अश्रु मोतियों की लड़ी तो देखो ।
भेंट अब तुम को ये फूलों के हार कोन करे ।।

४. माँगना है जो वही माँग लेगा तुम से 'प्रकाश' ।
वन के भिक्षुक पुकार द्वार द्वार कौन करे ॥ (कविवर प्रकाश)

भजन नं० ६

मुझे भगवान् वह दिल दे–कि जिसमें प्यार तेरा हो ।
जवां वह दे, जो करती हर समय इजहार तेरा हो ॥
१. मुझे वो बखश दे आँखें, जिन्हें हो जुस्तजू तेरी ।
कि जर्रे जर में जिनको, फकत दीदार तेरा हो ॥
२. मुझे देना सदा संगत, तो देना अपने प्यारों की ।
कि जिन को हर समय विश्वास और इतबार तेरा हो ॥
३. मेरा साथी जमाने में बनाना उसको हे भगवन् ।
दया हो जिसके दिल में, और सेवा दार तेरा हो ॥
४. इन आँखों से लगाता ही फिरूँ मैं चरण रज उसकी ।
भक्त निष्काम जो करता सदा आधार तेरा हो ॥
५. यह 'प्रेमी' काट ही लेगा, खुशी से जिन्दगी के दिन ।
मेरे सिर पर कृपा का हाथ, जब सरकार तेरा हो ॥

भजन नं० ७

(छू लेने दो···)

मुझे ऐसा बना दो मेरे पिता, दुनियां में लगे ठोकर न कहीं ।
जाने अनजाने भी मुझ से—नुकसान किसी का हो न कहीं ॥
१. उपकार सदा करता जाऊं, दुनियां अपकार भले ही करे ।
बदनामी न हो जग में मेरी, कोई मान भले ही दे न कहीं ॥
२. तू ही बस मेरा ऐसा है, दुःख में भी साथ नहीं तजता ।
दुनियां मुझे प्यार करे न करे, खोऊँ तेरा भी न प्यार कहीं ॥
३. जो तेरा बन कर रहता है—काटों में फूल खिलाता है ।
कितनें ही कांटे पांव लगें—पर फूल भी हों कांटे न कहीं ॥
४. मन हो मधुपूर्ण कलश मेरा, आखों में ज्योति छलकती हो ।
तुम से मधु ऐसा पीने को, जगता ही रहूँ, सोऊँ न कहीं ॥
५. मैं क्या हूँ राह, मेरी क्या है, यह 'सत्य' सदा मैं समझ सकूँ ।
इस राह पै चलते चलते कभी—मेरे पांव थकें न, रुकें न कहीं ॥

(प० सत्यपाल जी)

भजन नं० ८

मेरा उद्देश्य हो प्रभु—आज्ञा को तेरी पालना ।
कर कर कमाई धर्म की, चरणों में तेरे डालना ।।
१. मानव के नाते हे पिता, जाऊँ कहीं जो भूल मैं ।
इतनी विनय है आप से बन कर सखा सम्भालना ।।
२. जितने भी यज्ञ कर्म हों, श्रद्धा व प्रेम से करूँ ।
आएँ अभद्र भाव जो, उन को सदा ही टालना ।।
३. रक्षा तो मेरी तू करे, रक्षा में तेरी मैं रहूँ ।
अपने गुणों के सांचे में जीवन को मेरे ढालना ।
४. मृत्यु का मुझ को भय न हो, मांगे है 'देश' वर यही ।
बुद्धि मेधावी की मेरी झोली में भिक्षा डालना ।। (पं० देशराज जी)

भजन नं० ९

(छू लेने दो···)

ईश्वर तेरी महिमा का कोई भी पारावार नहीं ।
पत्ते पत्ते तू ही समाया—तेरे बिना संसार नहीं ।।
१. सूर्ज चान्द सितारों में—तेरी ही आभा रहती है ।
वह दिल है अन्धकार भरा—जिसमें तेरा दीदार नहीं ।।
२. इस जगती में जो कुच्छ भी है, तू ही उसका स्वामी है ।
ममता में पड़कर के मेरा—जाता है अहंकार नहीं ।।
३. तू शक्तिवाला, मैं हूँ निर्बल, तेरे पथ का गामी हूँ ।
बिना कृपा तेरी, मेरा हो सकता उद्धार नहीं ।।
४. भक्तों का है तू रखवाला—दीनों दुःखियों का तू त्राता ।
तेरे बिना इस जगती का—हो सकता उपकार नहीं ।। (इन्द्रराज)

भजग नं० १०

(सावन का महीना···)

ईश्वर तेरी महिमा का—नहीं है पारावार,
है महिमा अपरम्पार । नहीं है···
तू ही है निर्माता जग का सुखों का भण्डार ।।
१. पृथ्वी शशि तारे—कण कण में ज्योति आप की ।
सूर्य मण्डल में भी तो है—रश्मि केवल आप की,

आप की ही शक्ति का है—अद्‌भुत चमत्कार ॥
२. ये पर्वत नदियाँ सारे—करते हैं सब इशारे,
ये देव गण भी खड़े हैं—सब तेरे सहारे।
तू ही सब का आधार—और है स्वयं निराधार ॥
३. ऋषि-मुनि-और-योगी-तेरे ही गीत गाते,
वेदों के उद्‌गाता भी—तुझे ही दर्शाते।
भक्तों का रखवाला—दुःखों का मोचन हार ॥
४. दुनियां की छटा सारी—फूलों में न्यारी न्यारी,
बरबस मन को हरती—वृक्षों की यह हरयाली।
ऐश्वर्य 'इन्द्र' तेरा—विस्तृत औ अपार ॥ (इन्द्रराज)

भजन नं० ११

(मैं परी कहां...)

वह ईश्वर है रखवाला—वह सब कुछ देने वाला,
तू उस की शरण में आ प्राणी। तू उस...
१. निर्गुण निर्भय नित्य निरञ्जन
असुर निकन्दन जगमन रञ्जन,
अशरण शरण सकल दुःख भंजन
अविकल अविचल अगम अपार।
तू है सर्वाधार—और तेरा ही विस्तार
तेरी, महिमा लखी न जाए—हम सब की समझ में न आए ॥ तू उस...
२. फूलन में, पातन में, वृक्षन में, डालन में,
कलियों में, फलियों में, पके आम्र फल में,
समुद्र में, आकाश में, कूप में, तड़ाग में,
बसता है वह नदियों की कल कल में।
सूर्य में प्रताप और चन्द्र में प्रकाश,
यह बिजली कोन चमकाए—हम सब की समझ में न आए ॥ तू उस...
(इन्द्रराज)

भजन नं० १२

प्रभु भक्ति बिना जिन्दगी—बेकार हो गई।
प्रभु वन्दना न कीनी—सब बरबाद हो गई ॥

१. इन्द्रियों के विषयों ने—मन भरमाया है,
मन को है समझाना ।
जीवन नौका, अब तो विन पतवार हो गई ।।
२. ईश्वर की भक्ति बिना—मन का न मैल धुले,
मन है पवित्र बनाना ।
विषयों के भोगों में पड़ बरबाद हो गई ।।
३. मन कभी अच्छा बने, कभी बन जाए बुरा,
मन का है खेल निराला ।
इन खेलों के ही कारण सब बेगार हो गई ।। (इन्द्रराज)

भजन नं० १३

ओ दुनियां बता इस से बढ़कर—फिर और हकीकत क्या होगी ।
जान दे दी तलाशे हक के लिए—फिर और इबादत क्या होगी ।।
१. यों तो हर रात की तारीकी—देती है पयाम उजाले का ।
जिस से यह जहां पुरनूर हुआ—उस रात की कीमत क्या होगी ।।
२. जहरें भी पिलाईं अपनों ने—खंजर भी चलाए अपनों ने ।
अपनों के ये अहसां क्या कम हैं, गैरों से शिकायत क्या होगी ।।
३. औरों के लिए मरने वाले—मर कर भी हमेशा जीते हैं ।
जिस मौत से दुनियां प्यार करे, उस मौत की अजमत क्या होगी ।।
४. सदियों की खिजां के बाद खिला—इक फूल उसे भी तोड़ दिया ।
कलियों के मसलने वालों से-फूलों की हिफाजत क्या होगी ।।

भजन नं० १४

हे दयानिधे !

वह शक्ति हमें दो दयानिधे, कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें ।
पर सेवा पर उपकार करें, निज जीवन सफल बना जावें ।।
हम दीन दुःखी निबलों विकलों के सेवक बन सन्ताप हरें ।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें खुद तर जावें ।। वह शक्ति०
छलदम्भ द्वेष पाखण्ड झूंठ अन्याय से निशिदिन दूर रहें ।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधारस बरसावें ।।
निज आन बान मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे ।
जिस देश जाति में जन्म लिया बलिदान उसी पर हो जावें ।।

भजन नं० १५

(राग आसावरी तीन ताल)

(१) ओं विश्वानि:—हे प्रभु कल्याणी मति दीजे।
पाप भावनाएँ सब की सब, मेरे मन से छीजें ॥ हे...

(२) ओं हिरण्य गर्भ :—ज्योति पुञ्ज के एक सहारे,
भूतमात्र के स्वामी प्यारे।
धार रहे हो विश्व जगत को,
सुखमय स्तुति सुन लीजे ॥ हे...

(३) ओं य आत्मदा:—सब बल सब तुम से ही पावें,
सकल देव प्रभु तुम को ध्यावें।
तेरी शरण अमृति अशरण मृति,
सुखमय स्तुति सुन लीजे ॥ हे...

(४) ओं य: प्राणतो:—श्वास तेरी महिमा से आव,
पलक न तुम विन झपकने पावें।
द्विपद चतुष्पद के हे स्वामी,
सुखमय स्तुति सुन लीजे ॥ हे...

(५) ओं येन द्यौ:—उग्र तेज द्यौ तुम से पावे,
भूमि तुम्हीं से दृढ़ बन जावे।
स्वर्ग मोक्ष गृह गण के धारक,
सुखमय स्तुति सुन लीजे ॥ हे...

(६) ओं प्रजापते:—जन्मी जग पर कोई हिरसावे,
तुम बिन प्रेम विजय नहीं पावे।
होयं मनोरथ पूरे भगवन्,
धन जन स्वामी कीजे ॥ हे...

(७) ओं सनो:—बन्धु पिता तुम मेरे भ्राता,
सकल धाम भुवनों के ज्ञाता।
भोगें अमृत देव गणशत सम,
रहें धाम में तीजे ॥ हे...

(८) ओं अग्ने नय:—हे ज्ञानी शुभ मार्ग दिखाओ,
पाप वासनाएँ बिनसाओ।
दुर्भावों से लड़ शक्ति दो,
भूरि विनय सुन लीजे ॥ हे...

रचयिता—स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती

भावार्थ—ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्रा:

गायत्री गान

ओ३म् मेरे धर्म को मुँह बोलती तस्वीर है।
है तू ही सर्वस्व मेरा और मेरी जागीर है ॥
प्राणों से प्यारा ईश्वर दुःख का मोचनहार है,
सब सुखों का दाता है और ज्ञान का भण्डार है ॥
शुद्ध है विज्ञान में, प्रकाश का प्रकाश है,
दानी है सारे जगत् का सबका जीवनधार है ॥
भक्त हों हम तुझ प्रभु के ऐसी इच्छा हम करें,
प्रेम से तेरे गुणों का रात दिन सुमिरन करें ॥
शुद्ध बुद्धि दीजिए और ब्रह्म बुद्धि दीजिए,
हाथ जोड़े मैं कहूँ और, मेरी शुद्धि कीजिये ॥

—:०:—

गायत्री गीत

तू ने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
तुझ से ही पाते प्राण हम, दुःखियों के कष्ट हरता तू।
तेरा महान् तेज है, छाया हुआ सभी स्थान ॥
सृष्टि की वस्तु-वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान ॥
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला ॥

———



गायत्री स्तोत्र

हे प्राणों के प्राण ! दुःख के हरने वाले सुख के धाम।
देव ! जन्मदाता ! नित्य ध्यावें, तेरा ऐश्वर्य अभिराम ॥
बुद्धि हमारी सत्य मार्ग में, रहे अटल हे दीनानाथ।
यह वर दो, हम द्वार खड़े हैं, शीष झुकाए जोड़े हाथ ॥

(स्वामी आत्मानन्द जी)

"आरती"

ओं जय जगदीश हरे-प्रभु जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे ॥ओं०॥
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ओं०॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूं जिसकी ॥ओं०॥
तुम पूर्ण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ओं०॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता।
मैं अबोध अज्ञानी, कृपा करो भर्त्ता ॥ओं०॥
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विध मिलूं दयामय, मैं तुमको कुमति ॥ओं०॥
दीनबन्धु दुःख हर्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥ओं०॥
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ओं०॥

"शान्ति पाठ"

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति-
रोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म
शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेवशान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।
ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥

भजन

मंगल कामना

सदा फूलता फलता भगवन् यह याजक परिवार रहे।
रहे प्यार जो किसी से इनका सदा आप से प्यार रहे ॥
(१) मिथ्या कर अभिमान कभी न जीवन का अपमान करें।
देवजनों की सेवा करके वेदामृत का पान करें।
प्रभु आपकी आज्ञा पालन करता हर नर नार रहे ॥
(२) मिले सम्पदा जो भी इनको उसको माने आपकी।
घड़ी न आने पावे इनपे कोई भी सन्ताप की,
यही कामना प्रभु आपसे कर हम बारम्बार रहे ॥
(३) दुनियांदारी रहे चमकती धर्म निभाने वाले हों,
सेवा के सांचे में सबने जीवन अपने ढाले हों,
बच्चा-बच्चा परिवार का बन कर श्रवण कुमार रहे ॥
(४) बनें रहें सन्तोषी सारे जीवन के हर काल में,
हाल काल हो कैसा इनका रहें मस्त हर हाल में,
ताकि 'देश' बसाया इनका सुखदाई संसार रहे ॥

रचियता—पं० देशराज जी

———



ओ३म् की महिमा

तस्य वाचकः प्रणवः ।। यह योग सूत्र है ।

उस परमात्मा का कथन करने वाला "प्रणव" अर्थात् (ओ३म्) अक्षर है ।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।

कठोपनिषद् ।।

अर्थ—(सर्वे वेदाः) चारों वेद ऋग, यजुः, साम, अथर्व (यत्) जिस (पदम्) ब्रह्म को (आमनन्ति) बार-बार कहते हैं (तपांसिसर्वाणि) सब कर्त्तव्ययम्, नियम आदि (च) और (वदन्ति) कहते हैं (यत्) जिसकी (इच्छन्तः) कामना करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) सकल सुखों और धर्मों के मूल ब्रह्मचर्य व्रत को (चरन्ति) पालन करते हैं (तत्) उस (ते) तेरे मिलने योग्य (पदम्) ब्रह्म को (संग्रहेण) संक्षेप से (ब्रवीमि) कहता हूं (ओ३म् इति एतत्) ओ३म् ऐसा ही उसका स्वरूप है ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम ।। गीता० अ०।।

अर्थ—(यः) जो पुरुष (ओ३म्) ओ३म् (इत्येकाक्षरम्) इस (एकाक्षरम्) अविनाशी स्वरूप (ब्रह्म) सबसे महान् ब्रह्म को (व्याहरन्) उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप सच्चिदानन्द ओ३म् नाम को (अनुस्मरन) चिन्तन करता हुआ (यः) जो (प्रयाति त्यजन् देहम्) इस शरीर को त्याग करता है (सः) वह पुरुष (परमां गतिम) परम अति श्रेष्ठ मोक्ष पद को (याति) प्राप्त करता है ।

गीता अध्याय ८ ।।

आर्य समाज के नियम

१ सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२ ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

३ वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४ सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६ संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७ सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८ अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९ प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१० सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

—:०:—

राजहंस प्रेस, मेरठ।

